मानव संस्कार ग्रन्थमाला - ग्यारहवाँ पुष्प

वेदों में बताये गये
उपदेशों व आज्ञाओं पर चल कर ही
मानव जीवन को सफल
बनाया जा सकता है।

यजुर्वेद आध्यात्मिक उपदेश

पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के यजुर्वेदभाष्यम्
से संकलित 150 आध्यात्मिक उपदेश

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक
मदन अनेजा
मो. 9873029000

प्रकाशक :
मदन लाल अनेजा
4 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,
राम मन्दिर गली, दिल्ली–110051,
मो0– 09873029000,

पुस्तक मिलने का पता :-

1. विक्रान्त अनेजा
सी–79, तक्षशिला अपार्टमेन्ट,
प्लाट नं0–57, आई0पी0
एक्सटेंशन, दिल्ली–110092

2. मदन लाल अनेजा
कुटिया नं0 –179, मुख्य शाखा,
आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर, हरिद्वार

3. विशाल अनेजा
3 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,
राम मन्दिर गली, दिल्ली–110051,
मो0– 09873029000,

प्रथम संस्करण : फरवरी 2024

(वेद प्रचार–प्रसार हेतु निःशुल्क वितरण)

All books of Manav Sanskar Foundation
can be down-loaded free of cost

at :

www.manavsanskar.com

प्रेरणा स्त्रोत

(15.06.1955- 27.04.2023)

श्रीमती स्वराज अनेजा

पत्नी श्री मदन अनेजा

भूमिका

वर्तमान काल में मानव, ऋषियों के यथार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ होकर, भौतिकवाद और पाश्चात्य संस्कृति का पोषक और समर्थक बन गया है। अधिकतर मनुष्य संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव और भोगवाद में लिप्त होने के कारण वेद और आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण अनैतिकता, भ्रष्टाचार व अनाचार सब तरफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य आध्यात्मिक शोषण, अन्धकार, अन्धविश्वास, दुराचार, दुर्व्यवहार का शिकार आज भी हो रहा है। इस कठिनाई, समस्या व स्थिति का समाधान करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक ''**यजुर्वेद आध्यात्मिक उपदेश**'' में 150 आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन वेदों के प्रख्यात दार्शनिक एवं विचारक पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित ''यजुर्वेदभाष्यम्'' से समाजहित में किया गया है।

आध्यात्मिक उपदेशों का प्रतिदिन स्वाध्याय, चिंतन व पालन करने से मुख्यत: निम्न लाभ हैं :-

1. ये उपदेश मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं और उसे पतन की ओर अग्रसर होने से रोकते हैं।
2. मानव को सृष्टिकर्ता व सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता का अनुभव कराते हैं।
3. व्यक्ति को परिपूर्ण, पवित्र एवं साहसी बनाते हैं।
4. मनुष्य को वैदिक ज्ञान से परिचित कराते हैं।
5. मनुष्य को अपनी इन्द्रियाँ वश में करने हेतु सहायता करते हैं

ताकि व्यक्ति इसी जन्म में ईश्वर की अनुभूति कर सके।

6. सब क्लेशों (कष्टों) का मूल अविद्या है। क्लेशों से ऊपर उठने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। प्रभु ने इस प्रकाश को उपदेशों के रूप में वेदवाणी में रखा है।
7. ये उपदेश भक्ति भावना को हृदय में निष्ठा एवं श्रद्धा जाग्रत करते हैं।
8. मनुष्य का दृष्टिकोण विशाल बनाते हैं और आदर्श जीवन जीने में सहायता करते हैं।
9. ये उपदेश आत्मसंतुष्टि प्रदान करने में सहायक हैं। हमें प्रभु का ज्ञान कराते हैं।
10. ये उपदेश जीवन में आई चुनौतियों का मुकाबला करने व स्वयं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में केवल आध्यात्मिक उपदेशों का ही संकलन किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये आध्यात्मिक उपदेश साधकों की, वेदों के प्रति रूचि उत्पन्न करेंगे और वे वैदिक धर्म को अपनाकर अपना व अन्यों के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत व निष्पाप बनायेंगे।

पं. हरिशरण जी का भाष्य अति उत्तम है, सरल है। अतः आप से निवेदन है कि इन उपदेशों को विस्तार से समझने के लिए पं. हरिशरण जी के भाष्य का स्वाध्याय अवश्य करें।

नोट :- पुस्तक में दी गई मन्त्र से पूर्व संख्या इस पुस्तक की है और अन्तवाली संख्या यजुर्वेदभाष्यम् की है।

मदन अनेजा

आध्यात्मिक उपदेश

1. ।। ओ३म्।। इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।।

यजु -1/1

उपदेशः जिस व्यक्ति में शुभ व निष्काम कर्म करने की प्रेरणा है, शक्ति है, उत्साह है, वही व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता हुआ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करता है।

प्रभु जीव को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि मनुष्य को (1) गतिशील होना चाहिए, (2) अहिंसक होना चाहिए, (3) श्रेय मार्ग पर चलना चाहिए, (4) उत्तम सन्तान वाला होना चाहिए, (5) रोग-ग्रस्त नहीं होना चाहिए। प्रकृति में आसक्त व्यक्ति ही रोगी हुआ करता है, (6) बिना श्रम के धन प्राप्ति की इच्छा करने वाला नहीं बनना चाहिए, (7) प्रभु का उपासक होना चाहिए, (8) प्रकृति का ठीक-ठीक प्रयोग करने वाला होना चाहिए, (9) परोपकारी होना चाहिए एवं (10) काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पर संयम रखने वाला होना चाहिए।

2. वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

यजु. 1/3

उपदेशः (1) प्रतिदिन यज्ञमय जीवन बिताना, यज्ञों में लगे रहना, (2) सर्वशक्तिमान प्रभु की उपासना करना और (2) वेदों का स्वाध्यय करना और वैदिक सत्संग में भाग लेना - मनुष्य के जीवन को पवित्र बनाता है।

3. सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳसोमेनाममच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष।।

यजु. 1/4

उपदेशः मनुष्य का अधिकार कर्म पर है, फल पर नहीं। वेदवाणी सभी मनुष्यों के कर्मों का वर्णन करती है। अधिकारों पर यह बल नहीं देती। वस्तुतः जीवन को सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पर बल दे और अधिकार की चर्चा न करे।

4. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि।।

यजु. 1/10

उपदेशः यह संसार सर्वज्ञ एवं दयालु प्रभु का बनाया हुआ है। अतः न तो यहाँ अपूर्णता है और न ही कोई वस्तु हमारे लिए दुःखद है। परन्तु जब अल्पज्ञता व व्यसनासक्ति से हम वस्तुओं का ठीक प्रयोग नहीं करते तब ये वस्तुएँ हमारे लिए दुःखद हो जाती हैं।

प्रभु का आदेश है –न अतियोग करना, न अयोग करना, प्रत्येक वस्तु का 'यथायोग' करना।' अतः मनुष्य को प्रत्येक पदार्थ का सेवन प्रभु के निर्देशानुसार ही करना चाहिए।

5. अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। 'हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि।। यजु. 1/15

उपदेशः प्रभु का सामीप्य उसे ही प्राप्त होता है जो अपने जीवन को लोकहित के लिए अर्पित कर देता है और इस लोकहित–परार्थ की वृत्ति को सिद्ध करने के लिए भोजन का हविरूप होना आवश्यक है। भोजन की पवित्रता से ही मन की पवित्रता सिद्ध होती है।

6. कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घात जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳरक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳरक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना।। यजु. 1/16

उपदेशः प्रभु-भक्त सदैव अस्तेय धर्म का पूर्णतया पालन करता है, मधुर शब्द ही बोलता है। उसमें कभी भी पर-द्रव्य को लेने की वृत्ति उत्पन्न नहीं होती। पर-द्रव्य के लिए वह कभी लालायित नहीं होता।

आइये! हम प्रातःकालीन वायु व सूर्य के सम्पर्क में आकर स्वस्थ व विवेकयुक्त बनें। अस्तेय धर्म का पूर्णतया पालन करें।

7. धृष्टिरस्यपा ऽग्नेऽअग्निमामाद जहि निष्क्रव्यादꣳसेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। यजु. 1/17

उपदेशः शरीर का स्वास्थ्य, सात्विक आहार और नियमित जीवन पर ही निर्भर है। समय पर खाने वाला और उचित मात्रा में खाने वाला बहुत कम बीमार पड़ता है। अतः नियमित जीवन बिताकर शरीर को दृढ़ बनाना चाहिए। मांसाहारी का स्वभाव निश्चय से क्रूर हो जाता है और वह मानव धर्म को ठीक प्रकार से नहीं पाल सकता।

8. जनयत्यै वा सँर्योमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽअरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः। प्रथमामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके।। यजु. 1/22

उपदेशः गृहस्थ में प्रवेश का मुख्य प्रयोजन उत्तम सन्तान को जन्म देना और उसका सर्वांगीण विकास करना है। पति-पत्नी को इस पवित्र भावना से ही गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहिए। सन्तानों

को प्रभु की धरोहर समझना चाहिए और उनमें शक्ति (अग्नि) व शान्ति (सोम) के विकास का प्रयत्न करना चाहिए।

9. मा भेर्मा सविक्था ऽअतमेरुर्यज्ञो ऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा। यजु. 1/23

उपदेशः मनुष्य को वैदिक ज्ञान, कर्म और उपासना–तीनों का ही पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। ज्ञानपूर्वक कर्म करना भी भक्ति है।

जो व्यक्ति प्रभु के बने रहते हैं, वे थकते नहीं। सदैव निडर रहते हैं। प्रकृति के उपासक थक जाते हैं। विलासमय जीवन के कारण क्षीणशक्ति हो जाते हैं।

10. अपाररु पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या७ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्।

अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठान वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या७ शतेन पाशैर्यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्।।यजु. 1/26

उपदेशः दान प्रवृत्ति मनुष्य के इहलोक को भी सुखी बनाती है और परलोक को भी। स्वर्ग तो यज्ञीय वृत्ति से ही बनता है। अदानशील को स्वर्ग कभी नहीं मिलता। इसका इहिलोक नरक ही बना रहता है। दान ही यज्ञ की चरम सीमा है। यह दानरूप यज्ञ हमारे इस लोक को भी स्वर्ग बनाता है और परलोक को भी। जो व्यक्ति दानशील बना रहता है, वह भोगप्रणव नहीं होता।

11. अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोस्यूर्जे तवा ऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्नेधाम्ने मे भव यजुषेयजुषे।। यजु. 1/30

उपदेशः मनुष्य के स्वास्थ्य पर ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–ये सब पुरुषार्थ

निर्भर हैं और स्वास्थ्य के लिए मनुष्य का कटिबद्ध (संयमी) होना आवश्यक है। शरीर की ठीक ढंग से देखभाल करना अनिवार्य है।

जो मनुष्य अध्यात्म उन्नति के मार्ग पर चलता हुआ लोकहित के कार्यों में लगा रहता है वह प्रसन्न रहता है और ईश्वर भी उस पर अपनी कृपा करता है।

12. समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु।।

यजु. 2/5

उपदेशः जो व्यक्ति सदैव औरों के अवगुणों को देखता रहता है, वह अशुभों के रहने का स्थान बन जाता है। इसके विपरीत गुणों को देखने वाला गुणों की खान बन जाता है।

13. अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्त वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्।

यजु. 2/7

उपदेशः जीवन में वासनाओं के मल का प्रवेश होते ही निर्बलता व निर्धनता आने लगती है और धीरे-धीरे शक्ति का ह्रास होकर जीवन विनष्ट हो जाता है। अतः प्रतिदिन प्रातः सायं उपासना में ईश्वर से सामर्थ्य देने की निम्न प्रार्थना करनी चाहिए।

हे प्रभु! मुझे सामर्थ्य दो, शक्ति दो। मैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अहंकार पर संयम रख सकूँ।

जिस परिवार में सदस्यों का जीवन विलासमय न होकर शक्ति का सम्पादन करने वाला होता है, वह घर आत्म संयम वाला होता है। वहाँ पर सर्वमहान देव प्रभु का उपासन होता है और वृद्ध माता-पिता का सम्मान होता है। सुख और शान्ति बनी रहती है।

14. अग्ने वेर्होत्र वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद् देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा स ज्योतिषा ज्योतिः। यजु. 2/9

उपदेशः स्वस्थ मस्तिष्क व शरीर मनुष्य की सभी क्रियाओं को साधने वाले हैं। नियमित प्राणायाम, पौष्टिक भोजन, अच्छी नींद और यम-नियम का पालन मनुष्य के मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ रखते हैं।

15. उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्योष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।। प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि।। यजु. 2/11

उपदेशः स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति संसार में प्रत्येक पदार्थ का प्रयोग (क) प्रभु के आदेशानुसार मात्रा में करता है, (ख) प्रयत्न पूर्वक अर्जित पदार्थ का ही सेवन करने की कामना करता है, (ग) उसका मापक पोषण होता है, न कि स्वाद और (घ) अन्त में वह यज्ञशेष को ही खाने वाला होता है।

16. अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्नीषोमो तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं य वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि।। यजु. 2/15

उपदेशः वेदवाणी ज्ञान को तो उत्पन्न करती ही है, यह मनुष्य की वृत्ति को सुन्दर बनाकर उसे काम-क्रोध से बचाकर शक्तिशाली भी बनाती है। वेदवाणी का अध्ययन से समाज-द्वेषी व्यक्ति का भी जीवन परिवर्तित हो जाता है। वह द्वेषी रहता ही नहीं।

17. वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्।

व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि। यजु. 2/16

उपदेशः संसार में अच्छाई और बुराई–दोनों विद्यमान हैं। यदि हमारा दृष्टिकोण ठीक है तो संसार ठीक है। यदि हमारा दृष्टिकोण दूषित है, नकारात्मक है तो सारा संसार भी विकृत नजर आयेगा। जब हमारा दृष्टिकोण ठीक होगा तो संसार पुण्यमय बनेगा, अन्यथा पापमय।

18. सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳस्वाहा वाट्।। यजु. 2/18

उपदेशः संसार में जय–पराजय, हानि–लाभ व जीवन–मरण को क्रीड़ा के रूप में देखना चाहिए। मनुष्य में Sportsman like spirit होनी चाहिए। यह खिलाड़ी पुरुष की भावना उसको हर्ष–शोक के द्वन्द्व से ऊपर उठा देती है।

उत्तम कर्म, उत्तम उपासना, धर्म में स्थिरता, निन्दा–त्याग, स्वार्थ त्याग, परोपकार की भावना और मर्यादा का पालन–यह वेद सन्देश है। इसका अनुकरण करना चाहिये, पालन करना चाहिये।

19. अग्ने ऽ दब्धायो ऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा।। यजु. 2/20

उपदेशः आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण भी शुद्ध रहता है। अशुद्ध भोजन के त्याग से अशुभ इच्छाएं नहीं होती, अशुभ इच्छाओं

के न होने पर मनुष्य विषयों की ओर नहीं झुकता और विषयासक्ति न होने पर मनुष्य द्यूतवृत्ति (चालाकी) से धन कमाने की ओर नहीं बढ़ता है। पाप कर्म से बच जाता है।

रात्रि निन्द्रा से हमारे शरीर की टूट-फूट ठीक हो जाती है। उत्पन्न हुए कुछ मल दूर हो जाते हैं और हम अगले दिन के कार्यक्रम के लिए उद्यत हो जाते हैं। रात्रि में सोते समय हम प्रभु का ध्यान करते हुए सो जायें तो सारी रात प्रभु से हमारा सम्पर्क बना रहता है।

20. अग्नये कव्यवाहानाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा।
अपहताऽअसुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः।। यजु. 2/29

उपदेशः जो माता-पिता के प्रति सदा नम्र होते हैं, और उनको सुखमय स्थिति में रखते हैं, वे ही प्रशंसनीय होते हैं। उनकी ही संसार में कीर्ति होती है। उन पर ईश्वर की भी विशेष कृपा होती है।

21. ये रूपाणि प्रतिमुच्यमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्।।
यजु. 2/30

उपदेशः सुन्दर वेश-भूषा पहनकर बाजारों, क्लबों, मॉल और सिनेमाघरों में घूमना, जीवन का उद्देश्य केवल भोग समझना, अन्याय एवं निकृष्ट साधनों से धन कमाना, पराये माल को पाने की इच्छा रखना, यम-नियम का पालन न करना- यह सब क्रियायें आसुर (दानव) जीवन के लक्षण हैं। ऐसे लोग पिछले जन्म में किये संचित कर्मों को भोग रहे हैं। परलोक के लिए, अगले जन्म अच्छा मिले-इसके लिए शुभ या निष्काम कर्मों का संचय नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे लोग आध्यात्मिक ज्ञान से वंचित रहते हैं। यही कारण है कि ऐसे लोगों की आध्यात्मिक क्षेत्र में रुचि नहीं होती है।

22. अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत।। यजु. 2/31

उपदेश: यदि सन्तान संस्कारी है और तपस्वी जीवन व्यतीत करने की प्रबल इच्छा है तो घर में रहते हुए भी सभी इन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का निग्रहरूप तप किया जा सकता है। वैदिक ज्ञान से सन्तानों को लाभान्वित करते हुए जीवन को आनन्दयुक्त किया जा सकता है।

इसके लिए वनस्थ होना अनिवार्य नहीं है। हालांकि 60 वर्ष के बाद वानप्रस्थ जीवन सर्वश्रेष्ठ है।

23(क) सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्रयेन्द्रवत्या।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा।
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाण: सूर्यो वेतु स्वाहा। यजु. 3/10

(ख) उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्र वोचेमाग्नये।
आरेऽअस्मे च शृण्वते।। यजु. 3/11

उपदेश: प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए पाँच बातें सहायक हैं- (1) मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ अहिंसात्मक व कुटिलता-शून्य कर्मों में लगी रहें। (2) उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान की वाणियों को ग्रहण करने में व्यस्त रहें। (3) उसका सारा वर्ताव प्रीतिपूर्वक हो और (4) उसकी रात्रि व उषा: काल प्रभु स्मरण में बीते और (5) उसकी जीवन-यात्रा में सवितादेव उसके साथी हों।

24. सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन।
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्तऽ एमसि। यजु. 3/22

उपदेश: वेदवाणी मनुष्य में प्राणशक्ति का संचार करती है, विलासमय जीवन से ऊपर उठाकर शक्ति सम्पन्न बनाती है। उसे जितेन्द्रियता के मार्ग पर ले जाती है। जितेन्द्रिय पुरुष उस प्रभु का सदा स्मरण करता है, जिसके स्मरण से उसका जीवन निर्दोष बना रहता है।

प्रभु का सच्चा उपासन ज्ञानपूर्वक किये गये कर्मों से होता है, बशर्ते कि हम उन कर्मों का गर्व न करके नम्र बने रहें।

25. **राजन्तमध्वराणा गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्द्धमानस्वे दमे।।**

यजु. 3/23

उपदेश : हम उस प्रभु की उपासना करते हैं जो –

(क) संसार के प्रत्येक पदार्थ में दीप्त हो रहे हैं।

(ख) हिंसा व कुटिलता से रहित कर्मों के पालक हैं।

(ग) वेदवाणी के द्वारा सब सत्य विद्याओं के प्रकाशक हैं।

(घ) उनका स्वरूप 'प्रकाशमय' है–वे ज्ञानस्वरूप हैं। यह ज्ञान सदा पूर्ण रहता है–इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आती।

26. **स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव।**
सचस्वा नः स्वस्तये।। यजु. 3/24

उपदेशः जिस प्रकार पिता की आंख से ओझल न होने वाली सन्तान कुसंग और बुराइयों से बचा रहता है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्ता प्रभु का सच्चा उपासक उत्तम जीवन सम्पन्न बना रहता है। कदम–कदम पर प्रलोभनों से भरे इस संसार में वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता।

27. **अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।**
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः।। यजु. 3/47

उपदेश : आत्म शुद्धि के लिए वेदवाणी द्वारा प्रभु का गुणगान और वेदानुसार कर्म करते रहना नितान्त आवश्यक है। आलस्य आया और अवगुणों ने घेरा। इन कर्मों को करते हुए यदि हम मिलकर चलने वाले बनते हैं तो अपने घर में वापस पहुँचने के योग्य होते हैं। ब्रह्मलोक जीव का वास्तविक घर है। जीव यहाँ तो यात्रा पर आया हुआ है। यहाँ हमें 'सचाभुव' बनना है, मिलकर

चलना है। जीओ और जीने दो 'Live and let live' का पाठ सीखना है। प्रभु प्राप्ति का यही मार्ग है। यही यज्ञवृत्ति कहलाती है। देवताओं का जीवन ऐसा ही होता है।

28. **शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।। यजु. 3/63**

उपदेशः प्रभु स्मरण वासना को दूर भगाता है। वासना के त्याग के कारण मनुष्य अपने वीर्य रक्षा करने में समर्थ हो जाता है। उसके वीर्य में वासना की अग्नि उबाल नहीं लाती है। ऐसा उपासक लोकहित के कार्यों में निरन्तर लगा रहता है। यह भी "सर्वमहान् यज्ञ" है। आजकल वासना सम्बन्धित पाप होने का मुख्य कारण है-प्रभु स्मरण और उपासना की वैदिक पद्धति का पालन न करना और यम-नियम का उल्लंघन करना।

29. **एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे। ऋक्सासामाभ्याꣳसन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः।। यजु. 4/1**

उपदेशः स्वस्थ व उत्तम जीवन का आधार खान-पान की सादगी है। इसीलिए मनुष्य का खान-पान सादा होना चाहिए। स्वाद को प्रधानता नहीं देनी चाहिए। सादे खान-पान और यम-नियम के पालन से ही स्वस्थ दीर्घ आयु प्राप्त की जा सकती है।

हमारे सब कार्य ज्ञान व श्रद्धा से किये जायें। श्रेष्ठतम कर्मों से ही हम धन कमाएँ। औषधियाँ धारणशक्ति से युक्त हों, इनसे हम हिंसित न हों।

30. आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतष्वः पुनन्तु।
विश्वꣳहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वां शिवाशग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन्।।

यजु. 4/2

उपदेशः जल दिव्य गुणयुक्त है। प्रात:काल का जलपान शरीर व मन को स्वस्थ बनाता है और मल त्याग प्रबन्धन में अद्‌भुत क्षमता रखता है। आयुर्वेद में भी प्रातः जलपान की अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए अच्छे स्वास्थ्य की इच्छा रखने वाले सभी मनुष्यों को प्रात:काल का जलपान नियमानुसार अवश्य करना चाहिए।

31. स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्।
स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यास्वाहा वातादारभे स्वाहा।।

यजु. 4/6

उपदेशः प्रतिदिन यज्ञ करने से मन पवित्र बनता है। व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग होता है। अपने आप खाने की वृत्ति का भी धीरे-धीरे अन्त हो जाता है और दान देने की भावना जाग्रत होती है।

यज्ञ एक श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ में डाले गये औषधीय द्रव्य व गाय का घी छोटे-छोटे कणों में विभक्त होकर सारे अन्तरिक्ष में फैल जाते हैं। इससे सारा अन्तरिक्ष पवित्र व सुगन्धमय हो जाता है। अन्तरिक्ष में फैली औषधीय सुगन्ध श्वास वायु के साथ सभी प्राणी अपने अन्दर लेते हैं। इस प्रकार सभी को नीरोगता व उत्तम स्वास्थ्य का लाभ होता है। अतः सभी मनुष्यों को प्रतिदिन यज्ञ अवश्य करना चाहिए।

32. **विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्।**
विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।।

यजु. 4/8

उपदेश : इस संसार में धन अधिक आकर्षक है। सब

तरफ धन ही की महिमा दिखती है। धन की उपासना अधिक है, प्रभु की कम। धन की ओर झुकाव स्वाभाविक है, परन्तु इसकी ओर झुककर मनुष्य अन्ततः इसका दास बन जाता है। धन का दास बना और फिर मनुष्य मृत्यु की ओर ही बढ़ता है। अतः हमें प्रभु का ही वरण करना चाहिए, धन का नहीं। मनुष्य को उतने ही धन का वरण करना चाहिए जितना कि पोषण के लिए पर्याप्त हो। इतना तो हाथ-पैर हिलाने वाले को प्रभु कृपा से प्राप्त हो ही जाता है।

33. चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधे मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय।। यजु. 4/19

उपदेशः वेदवाणी मनुष्यों को ज्ञान देती है, समझदार बनाती है। यह स्वाध्यायशील व्यक्तियों की बुद्धि का विकास करती है और उनको उनके कर्त्तव्यों से अवगत कराती है। यह मनुष्य को कर्म बन्धन से बचाती है। वेदवाणी का स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति आसुर वृत्तियों का शिकार नहीं होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को वेदवाणी के अनुसार अपना जीवन-पथ बनाना चाहिए।

34. उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्।। यजु. 6/7

उपदेशः समाज सेवा व परोपकार में सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को स्वयं दान देना चाहिए, मेधावी होना चाहिए और यम-नियम के पालन में दृढ़ता होनी चाहिए।

35. अत्यन्याँ२।।ऽअगां नान्याँ२।।ऽ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्यो ऽ विद परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः।। यजु. 5/42

उपदेश : प्रभु हमारे अन्दर ही हैं। उनकी उपासना से (क) हमारा शरीर स्वस्थ होता है, मन निर्मल तथा बुद्धि तीव्र होती है, (ख) दिव्य गुणों की प्राप्ति होती है, (ग) व्यापक उन्नति हो पाती है, (घ) आसुर आक्रमणों से हमारी रक्षा होती है और (ङ) हम प्रभु के आत्मीय बन जाते हैं।

36. अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः।
सं ते प्राणो वातेन गच्छताथ्ठं समङ्गानि यजत्रैः स यज्ञपतिराशिषा।।

यजु. 6/10

उपदेश : हम वीर्य रक्षा के लिए खान-पान को सात्त्विक बनाएँ। भोजन के सात्त्विक होने पर शरीर में सोम का धारण सुगम होता है।

हमारी प्राणशक्ति ठीक हो, हमारे सब अंग दिव्यतापूर्ण हों और हमारी इच्छायें व कर्म उत्तम हों। तभी हम समाज सेवा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

37. माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि।
घृतस्य कुल्याऽ उपऽऋतस्य पथ्याऽअनु।। यजु. 6/12

उपदेशः दिव्य जीवन जीने के लिए - (1) कुटिलता का त्याग करना चाहिये (2) कटु शब्द नहीं बोलने चाहियें (3) औरों की सम्पत्ति का लोभ नहीं करना चाहिये (4) किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं करनी चाहिये (5) निरन्तर ज्ञान प्राप्त करते हुये आगे बढ़ना चाहिए (6) अपने जीवन को आदरणीय बनाना चाहिये और (7) नियमित जीवन बिताना चाहिये।

38. इदमापः प्रवहतावद्यं च मल च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु।।

यजु. 6/17

उपदेशः सबसे बड़े तीन पापों से बचना चाहिये - (1) किसी से द्रोह करना (किसी का अनिष्ट चाहना (2) झूठ बोलना और (3) निर्दोष/पाप रहित को कोसना।

ज्ञानी व पवित्र विद्वान हमें इन पापों से छुड़ाने में हमारी सहायता करते हैं।

39. मधुमतीर्नऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि।। यजु. 7/2

उपदेशः प्रभु का निज नाम ''ओ३म्'' के स्मरण करने से मनुष्य वासनाओं और रोगों का शिकार नहीं होता। प्रभु का नाम सदा जागरित रक्षक बन जाता है। अतः हमें 'ओ३म्' का सुन्दरता से उच्चारण करना चाहिए। ताकि शान्तस्वरूप प्रभु को प्राप्त कर सकें।

40. स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हुतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा।। यजु. 7/3

उपदेशः ईश्वर की अनुभूति करने के लिए शरीर में सोम (वीर्य) की रक्षा आवश्यक है। सोम की रक्षा से मस्तिष्क व शरीर-दोनों का विकास होता है और वासना का विनाश होकर प्राण व व्यान शक्ति बढ़ती है।

41. इन्द्रवायूऽइमे सुताऽअप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि। उपयामगृहीतो ऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा।।

यजु. 7/8

उपदेशः यम-नियम के पालन से ही मानव-जीवन में क्रियाशीलता और जितेन्द्रियता उत्पन्न होती है। ये क्रियाशील तथा जितेन्द्रिय पुरुष ही सोम की रक्षा करने वाले होते हैं।

जिस गृहस्थ में पति–पत्नी का समन्वय नहीं होता, वहां दोनों का जीवन अनियंत्रित सा हो जाता है। उस अनियंत्रित जीवन में दोनों का पतन निश्चित है। जब पति–पत्नी मिलकर यज्ञादि उत्तम कार्यों में लगते हैं तो वे एक दूसरे को पतन से बचाने वाले होते हैं।

42. राया वयꣳससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा हवसेन गावः। ता धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा।। यजु. 7/10

उपदेशः ईश्वर ने सोम (वीर्य) को ऋत (मोक्ष) और आयु के लिए इस शरीर में स्थापित किया है ताकि शरीर में सब क्रियायें ठीक–ठाक चलें, दीर्घ जीव प्राप्त हो और पति–पत्नी दोनों का जीवन माधुर्य पूर्ण हो।

43. मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता। आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्तवा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि।। यजु. 7/17

उपदेशः प्रभु उपासना से मन शान्त होता है। जीवन शुद्ध होता है। साधक सब क्रियाओं को बुद्धिमत्तापूर्वक करता है और अन्त में मन को पूर्ण रूप से जीत लेता है।

44. सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनो ऽधिष्ठानमसि।। यजु. 7/18

उपदेशः प्रभु की प्राप्ति का उपाय यही है कि मनुष्य बाह्य सम्पत्ति अर्थात् शरीर के स्वास्थ्य का सम्पादन करे और साथ ही आन्तर सम्पत्ति–पवित्रता व ज्ञान को सिद्ध करे। स्वस्थ, पवित्र व ज्ञानी पुरुष ही प्रभु प्राप्ति का अधिकारी होता है।

45. उपयामगृहीतो ऽस्याग्रयणो ऽसि स्वाग्रयणः। पाहि यज्ञ पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णु त्व पाह्यभि सर्वनानि पाहि।। यजु. 7/20

उपदेशः हमारा जीवन यज्ञमय हो, परन्तु हमें उन यज्ञों का गर्व नहीं होना चाहिए। यज्ञ को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। बाहर के यज्ञ 'द्रव्ययज्ञ' हैं, अन्दर के यज्ञ 'ज्ञानयज्ञ' हैं।

ज्ञानयज्ञ उत्कृष्ट है। उसे तो करना ही है, पर द्रव्ययज्ञों की भी आवश्यकता है। द्रव्ययज्ञों से शरीर का शोधन होता है, ज्ञानयज्ञों से आत्मा का। अत: दोनों ही यज्ञों को करना चाहिए।

46. सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणे ऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः।। यजु. 7/21

उपदेशः शरीर के अन्दर जल व वनस्पतियों से उत्पन्न वीर्य ही सात्त्विक वीर्य है। वही मनुष्य के जीवन को पवित्र करता है। मांसाहार से उत्पन्न वीर्य पवित्रता का साधक नहीं है। वेद में इसे उष्ण वीर्य कहा गया है और इसका शरीर में सुरक्षित होना सुगम नहीं है।

47. उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणा ध्रुवतमो ऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा नऽइन्द्रऽ इद्विशोऽ सपत्नाः समनसस्करत्।। यजु. 7/25

उपदेशः वही व्यक्ति ईश्वर की अनुभूति कर पाता है, उसका साक्षात्कार करता है जो प्रात: सायं ईश्वर के चरणों में बैठकर यम-नियमों को अपनाने का प्रयत्न करता है।

उस प्रभु की अनुभूति होने पर, उसका हृदय में प्रकाश होने

पर सब वैर भाव समाप्त हो जाते हैं और प्रेम का प्रसार होता है।

48. यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयो-रुपस्थात्। अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳस्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि।। यजु. 7/26

उपदेशः प्रभु ने ही शरीर में सोम (वीर्य) की स्थापना की है। सोम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य है- (1) सारे शरीर में प्राण शक्ति का सेचन करना; (2) मस्तिष्क को दीप्त करना, (3) शरीर को दृढ़ बनाना, (4) जननेन्द्रिय को स्वस्थ रखना, (5) हृदय को पवित्र व हिंसावृत्तिशून्य बनाना।

49. आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्।। यजु. 7/28

उपदेशः सोम की रक्षा से मन बलवान् होता है, शरीर के सभी अंगों को बढ़ाने वाली शक्ति पुष्ट होती है, जीवन स्फूर्तिमय बनता है और सब शक्तियों का विकास होता है। शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास का मूल यह सोम ही है।

50. कोऽसि कतमो ऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।।

यजु. 7/29

उपदेशः प्रभु-उपासना से सोमरक्षा होती है। मनुष्य स्वस्थ, ज्ञानी व जितेन्द्रिय बनता है। वह उत्तम प्रजा वाला, वीर और उत्तम धन वाला होता है।

51. यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सोऽअष्टधा दिवमन्वाततान। स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳरायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा।। यजु. 8/62

उपदेशः यज्ञशील व्यक्ति के जीवन में इन आठ गुणों का विकास होता है वह –

(1) सब प्राणियों पर दया करता है, (2) सहनशील होता है, (3) दूसरों के गुणों में दोष दर्शन नहीं करता है, (4) पवित्रता को अपनाता है (5) सब कार्यों को सहज स्वभाव से शान्तिपूर्वक करता है, (6) मंगल कार्यों में प्रवृत्त होता है, (7) उदारता को अपनाता है, (8) किसी भी वस्तु के लिए अत्यन्त आसक्ति वाला नहीं होता है।

52. **अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सो ऽमृतत्वमशीयायु-र्दात्रऽएधि मयो मह्य प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्य वरुणो ददातु सो ऽ मृतत्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि व्यो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरूणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्य प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातुसोऽ मृतत्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्य प्रतिग्रहीत्रे।। यजु. 7/47**

उपदेशः दान देने का उद्देश्य यह है कि – दाता को दीर्घजीवन, प्राणशक्ति, वासनाओं के आक्रमण से बचाव तथा क्रियाशक्ति व वेग प्राप्त हो। दान मनुष्य को विलासवृत्ति से बचाकर इन सब वस्तुओं को प्राप्त कराता है। यज्ञशेष तो अमृत है। यह दान पाप से बचाने वाला सर्वोत्तम साधन है।

दान पात्र (वैदिक विद्वान, ईश्वर भक्त) को ही दान देना चाहिए। अपात्र को दिया हुआ दान न परलोक में कल्याण देता है, न इहलोक में। व्यक्ति में अपात्रता की अधिक आशंका है। अतः समाज को दान देना श्रेयस्कर है।

53. **देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केत नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं
नः स्वदतु स्वाहा।। यजु. 9/1**

उपदेश: ज्ञान की पवित्रता ही सब पवित्रताओं का मूल है। ज्ञान पवित्र होने पर वाणी पवित्र होती है और वाणी के पवित्र होने पर क्रियायें पवित्र होती है। 'विचार, उच्चार व आचार' यह क्रम है। विचार की पवित्रता शब्दों में आती है, वही क्रिया में। अत: हमारा ज्ञान पवित्र हो।

54. आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम।। यजु. 9/21

उपदेश: लोकहित के लिये किये गये कर्म यज्ञ हैं। ये कर्म सङ्गरहित होने पर एवं फल की इच्छा को छोड़कर किये जाने पर अत्यन्त उत्तम हो जाते हैं। यही यज्ञों को यज्ञिय भावना से करने का आशय है। यदि यज्ञ को यज्ञीय भावना से करते हैं तो हम प्रभु के सच्चे पुत्र होते हैं। हमारा जीवन सुखमय व निरोग होता है।

55. युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्तया।। यजु. 11/2

उपदेश: मन की दिशा को ही बदला जा सकता है, इसे बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता। इसका वेग उत्तम कर्मों की दिशा में हो जाने पर यह सदा उन्हीं में लगा रहता है और हमारे जीवन को स्वर्गतुल्य बना देता है। मन को विषयों से हटाकर आत्मतत्त्व में लगाने का नाम ही योग है। इधर से उखाड़ना, उधर लगाना। अत: साधक को मन को वश में करना चाहिए, ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति में व्यस्त रखना चाहिये और कर्मेन्द्रियों को यज्ञादि उत्तम कार्यों में लगाये रखना चाहिए। यही जीवन को सुखी बनाने का मार्ग है। यही सच्चा कर्म योग है।

56. युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।।
यजु. 11/4

उपदेशः जब हम अपने मन को विषयों से हटाकर उसे आत्मतत्त्व के दर्शन में लगाने का प्रयत्न करते हैं, तब उस महान ज्ञानी प्रभु की ज्ञान–वाणियों को अपने साथ जोड़ने वाले बनते हैं। उन वाणियों द्वारा हम जान पाते हैं कि उस प्रभु ने ही सारे लोक–लोकान्तरों को बनाया है और उस प्रभु की स्तुति महान है।

57. हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳहिरण्ययीम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वतः।।
यजु. 11/11

उपदेशः जिस व्यक्ति का जीवन सतत प्रभु स्मरण–वाला हो जाता है, उसका जीवन कभी भी प्राकृतिक विषयों से बद्ध नहीं होता, वह कभी भी भोगों का शिकार नहीं होता। परिणामतः उसके जीवन में उसके अंग कभी नीरस नहीं होते।

58. पृथिव्याः सधस्थादग्निं मङ्गिरस्वदाभराग्निं
पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमो ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भिरिष्यामः।।
यजु. 11/16

उपदेशः जो व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं, उनके लिए सन्ध्या और अग्निहोत्र–दोनों प्रतिदिन करना अनिवार्य है। इसलिए हमें घर में प्रतिदिन सन्ध्या व अग्निहोत्र करना चाहिए ताकि हमारी मनोवृत्तियाँ शुभ बनी रहें।

59. उत्क्राम महते सौभगायास्मदास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन्।
वयꣳस्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्निं खनन्तऽ उपस्थेऽअस्याः।।
यजु. 11/21

उपदेशः प्रभु–दर्शन ही महान सौभाग्य है। पार्थिव भोगों से ऊपर उठकर ही हम ''महान सौभाग्य'' को प्राप्त कर सकते हैं। साधना एवं चिन्तन के द्वारा अन्नमयादि कोशों से ऊपर उठते हुए हमें हृदय रूप गुहा में स्थित प्रभु को पाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये।

60. उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳसुकृतं पृथिव्याम्।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳस्वो रुहाणाऽअधि नाकमुत्तमम्।।

यजु. 11/22

उपदेशः जीवन को सुखी बनाने के लिए, मनुष्य को चाहिए–(1) धन का दान करे, (2) वैषयिकवृत्ति (मन की दशा) से ऊपर उठे, (3) पुण्य वाले उत्तम लोक का निर्माण करे और (4) घर को स्वर्ग बनाते हुए प्रभु–दर्शन के लिए प्रयत्नशील हो।

61. संवसाथाꣳस्वर्विदा समीचीऽउरसा त्मना।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्त्रमित्।।

यजु. 11/31

उपदेशः प्रभु के उपासक पति–पत्नी आनन्दमय प्रभु को धारण करते हैं। इनकी विशेषतायें निम्न हैं :

(1) मेल से चलते हैं; (2) घर को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करते हैं; (3) उत्तम गति वाले होते हैं; (4) आत्मनिर्भरता से चलते हैं और (5) हृदयों में प्रभु को धारण करते हैं, परिणामतः कभी अन्धकार में नहीं होते।

62. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्रऽईधेऽअथर्वणः।
वृत्रहणं पुरन्दरम्।। यजु. 11/33

उपदेशः प्रभु दर्शन उन्हें होता है जो ध्यानी, तत्त्वद्रष्टा व वासनाओं से अपनी रक्षा करने वाले होते हैं। दर्शन होने पर वासना पूर्णतया विलुप्त हो जाती है और शरीर, मन व बुद्धि–तीनों ही पवित्र हो जाते हैं।

63. तमु त्वा पाथ्यो समीधे दस्युहन्तमम्।
धनञ्जयꣳरणेरणे।। यजु. 11/34

उपदेशः प्रभु का दर्शन वही करता है जो अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी भ्रष्ट नहीं होता। जो शक्तिशाली है अथवा औरों पर भी सुखों की वर्षा करता है। नाशक तत्त्वों व आसुरी वृत्तियों का संहार कर पाता है।

64. स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत- ऽओषधीषु।
चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तून् प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद् गाः।। यजु. 11/43

उपदेशः सर्वव्यापक प्रभु के दर्शन के लिए निर्दोष अन्तःकरण चाहिए। भक्तों के पवित्र हृदय में ही प्रभु निवास करते हैं। जब एक भक्त वानस्पतिक सात्त्विक भोजन व ज्ञान से अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है, तब प्रभु उसके हृदय में आविभूत (दर्शन होना) होते हैं।

65. मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः।।
यजु. 11/53

उपदेशः गरीबी भी एक रोग है। निर्धनता मनुष्य की चिंताओं का कारण बन, उसे क्षीणशक्ति कर देती है। अतः संसार में पूर्ण स्वास्थ्य के लिए उचित धन भी आवश्यक है और यह धन धर्मानुसार ही प्राप्त करना चाहिए।

66. सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम्।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्।।
यजु. 11/55

उपदेशः एक अच्छी पत्नी में चार गुण अवश्य होने चाहिए-(1) आयुर्वेद, मनोविज्ञान व आत्मविज्ञान का अध्ययन किये हुए हो, (2) क्रियाशील व कोमल स्वभाव वाली हो, (3) सदा प्रसन्न रहने वाली हो, और (4) घर में अन्न की वृद्धि करने वाली हो।

67. अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु।
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये।
पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति।। यजु. 11/59

उपदेशः सन्तानों के जीवन का निर्माण बहुत कुछ भोजन पर निर्भर है, इसलिए, माता का मुख्य कर्त्तव्य बच्चों को स्वस्थ बनाना तथा उनके जीवन का उत्तम परिपाक (निपुणता) करना है। इसी दृष्टिकोण से वह भोजन को महत्त्व देती है क्योंकि भोजन ने ही उनके शरीर व मनों को स्वस्थ करना है।

68. मित्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्।। यजु. 11/62

उपदेशः प्रभु-भक्त सभी का मित्र होता है, सभी को धारण करता है, सभी के कामों को सिद्ध करता है। वह स्वयं सम्भजनीय (सम्मानीय) वस्तुओं को प्राप्त करता है, ज्योतिर्मय जीवन वाला होता है, संसार में यशस्वी बनता है।

69. विश्वो देवस्य नेतुर्मतो वुरीत सख्यम्।
विश्वो रायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।।
यजु. 11/67

उपदेशः यह अद्भुत बात है कि सब कोई धन की कामना करता है। धन की कामना करनी भी चाहिए क्योंकि संसार-यात्रा के लिए धन आवश्यक है। इसके बिना एक पग भी चलना संभव नहीं। परन्तु हमें उतना ही धन जुटाना चाहिए जो हमारे भौतिक शरीर के लिए आवश्यक है और जिससे हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित रह सके।

70. अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः।।
यजु. 12/6

उपदेशः जो मनुष्य वेद वाणी को सुनकर, उसके अनुसार अपना जीवन बनाता है, उसका जीवन आनन्दमय हो जाता है। उसके जीवन में सब शक्तियों का विकास होता है। सारा जीवन प्रकाशमय हो जाता है। सारा संसार भी प्रकाशमय व उलझनों से रहित प्रतीत होता है।

71. **अस्ताव्यग्निर्नराᳩसुशेवो वैश्वानरऽ ऋषिभिः सोमगोपाः।**
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम्।।

यजु. 12/29

उपदेशः प्रभु के स्मरण से मनुष्य विषयासक्ति (विषय भोगों में लीन होने की अवस्था) से बचता है, अपनी शक्ति की रक्षा करने में समर्थ होता है, द्वेष से रहित और प्रेम से पूर्ण होकर सभी का भला चाहता है। इसके विपरीत प्रभु की आवाज को न सुनने वाला ही मार्ग-भ्रष्ट होता है।

72. **समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।**
आस्मिन्हव्या जुहोतन।। यजु. 12/30

उपदेशः प्रभु की सच्ची उपासना ज्ञान से ही होती है। ज्ञानी भक्त ही प्रभु को आत्मतुल्य प्रतीत होता है। उस प्रभु का ज्ञान तभी होता है जब हमारे हृदय पर से मल का आवरण दूर हो जाता है। प्रभु तो उपस्थित हैं ही, परन्तु हृदयों के मलावृत्त होने से उसका ज्ञान नहीं होता। मल हटा और प्रभु का दर्शन हुआ।

73. **अयᳪसोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।**
सहस्त्रियं वाजमत्यं न सप्तिᳪससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः।।

यजु. 12/47

उपदेशः सोम (वीर्य) की उत्पत्ति तो सभी में होती है, परन्तु उसका धारण सभी में नहीं होता। इसका धारण तो प्रभु कृपा से ही होता है। प्रभु का स्मरण हमें वासनाओं से ऊपर उठाता है और हम

सोम को सुरक्षित कर पाते हैं। इस सोमरक्षा से यह व्यक्ति भी शक्तिशाली होता है।

74. इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳराधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳरयिम्।।

यजु. 12/110

उपदेशः जो व्यक्ति अपने जीवन को यज्ञमय बनाता है, वह प्रभु का धारणीय बनता है। प्रभु उसे धारण करते हैं जो ऊँचा ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान ही तो उसे प्रभु के समीप पहुँचाता है। ज्ञानाभाव व अज्ञान मनुष्य को प्रभु से दूर करता है। अज्ञानियों से वह दूर है, ज्ञानियों के समीप।

75. आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्त्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः।।

यजु. 13/41

उपदेशः लोभ से शरीर का स्वास्थ्य नष्ट होता है। लोभ से बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। लोभ को छोड़ने से शरीर, मन व बुद्धि–सभी की उन्नति होती है। अभिमान सारी उन्नति को समाप्त करके मनुष्य को प्रभु से दूर ले जाता है। प्रभु का सान्निध्य अहंभाव को समाप्त करने वाला है। प्रभु प्राप्ति के लिए साधना यह है कि हम क्रोध छोड़ें, अभिमान न करें और उन्नति करते हुए 100 वर्ष तक जीने वाले बनें।

76. **योऽअग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽउत वा दिवस्परि।**
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु।।

यजु. 13/45

उपदेशः प्रभु का प्रिय वह होता है जो –

(क) उत्तम माता, पिता व आचार्य के सम्पर्क में आकर ज्ञानी बनता है।

(ख) शरीर में स्वास्थ्य की कान्ति वाला होता है।
(ग) मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि से दीप्त होता है तथा
(घ) उत्तम सन्तान का निर्माण करता है और उस सन्तान को प्रभु की ही समझता है।

77. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्त्रते नाकमच्छ।।

यजु. 15/24

उपदेशः जीवन के चार पड़ाव (यात्रा) हैं-

प्रथम (ब्रह्मचर्य) में ज्ञानदीप्ति बनना है।
द्वितीय (गृहस्थ) में सभी का पालन करना है।
तृतीय (वानप्रस्थ) में घर को छोड़ वनस्थ हो उस प्रभु की ओर चलना है और
चतुर्थ (संन्यास) में प्रकृष्ट दीप्ति वाले होकर प्रभु को पाना है। औरों को भी वेद ज्ञान से बांटना है।

78. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि।
उतो नऽउत्पुपूर्याऽ उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳस्तोतृभ्यऽआ भर।।

यजु. 15/43

उपदेशः अग्निहोत्र (हवन) में डाले गये विभिन्न पदार्थ व घी आदि नष्ट न होकर सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर सारे वायुमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं। ये पदार्थ वृष्टि-बिन्दुओं का केन्द्र बनकर इस पृथ्वी पर आते हैं और अन्न के एक-एक कण को पौष्टिक बना देते हैं।

नियम से अग्निहोत्र करने वाला व्यक्ति सदा आनन्दमय जीवन वाला व सौमनस्य वाला होता है। सदैव प्रभु-स्तवन (स्तुति) से सशक्त बनता है।

79. एभिर्नो ऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः।। यजु. 15/46

उपदेशः प्रभु-भक्त की सर्वोत्तम पहचान यही होनी चाहिए कि वह प्रभु की दी हुई वाणी (वेद) को पढ़ता हो। इस वाणी से ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन से औरों को भी ज्ञान का प्रकाश कराता हो, तेजस्वी हो, नम्र हो।

80. अग्निहोतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳसूनुꣳसहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। यऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः।।

यजु. 15/47

उपदेशः प्रभु प्राप्ति के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह –
(1) होता (यज्ञ में आहुति देने वाला) और दानशील बने।
(2) उत्तम निवास वाला व शक्ति का पुंज बने।
(3) उचित धनार्जन करे व खूब ज्ञानार्जन करे।
(4) शक्तिशाली बने व देव बनकर अहिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त होवे। और
(5) ज्ञान-दीप्ति से प्रभु-दर्शन की कामना करे और औरों को भी करवायें।

81. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः।
तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम्।।

यजु. 15/56

उपदेशः यज्ञ अग्नि हमारी सम्पत्ति को कम न करके बढ़ाता ही है। यह समझना कि 'पचास ग्राम घी जल गया' ठीक नहीं। वह घृत सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर सर्वत्र फैल जाता है, वह वायु में रोगकृमियों का नाशक बनता है, यही अग्नि का 'रक्षो-दहन' है।

अग्नि हमें स्वस्थ बनाता है। ठीक समय पर वृष्टि आदि का कारण बनकर प्रचुर मात्रा में पौष्टिक अन्नों के उत्पादन का कारण बनता है। इस प्रकार हमारे धनों की वृद्धि का हेतु होता है। दवाइयों के व्यय को भी समाप्त करके हमारे धनों का रक्षक बनता है।

82. ताऽअस्य सूददोहसः सोमꣳश्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः।। यजु. 15/60

उपदेशः जो प्रभु के उपासक होते हैं वे –

(1) अवगुणों को दूर करके गुणों का ग्रहण करते हैं।
(2) अपनी वीर्य–शक्ति को संयमी जीवन में परिपक्व बनाते हैं।
(3) ज्ञान–रश्मियों से सूर्य की भांति चमकने वाले बनते हैं,
(4) दिव्य गुणों को धारण करके धर्मार्थ काम का समान रूप से सेवन करते हैं।
(5) सदा ज्ञान के प्रकाश में रहते हैं और औरों को भी वेद ज्ञान से प्रकाशित करते हैं।

83. वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।। यजु. 18/1

उपदेशः मनुष्य का जीवन ध्यानमय व ज्ञानमय होना चाहिये ताकि ऐश्वर्य व शक्ति होने पर वह विलास और आराम के मार्ग पर न चला जाय। इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीवन न बिताये। जीवन के मुख्य लक्ष्य ''मोक्ष'' को प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

84. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।। यजु. 18/12

उपदेशः मांसाहार मनुष्य के स्वभाव को क्रूर बनाने वाला है। यह

मनुष्य को स्वार्थी व हिंसात्मक बना देता है। अतः प्रभु के समीप पहुँचने के लिए साधक को अहिंसा का पालन करना चाहिए और उसका भोजन वानस्पतिक ही होना चाहिए। शाकाहारी भोजन से ही उसे सशक्त बनना चाहिए।

आइये! चिंतन करें-मैं कहाँ तक उपरोक्त वेद की आज्ञा का पालन करता हूँ।

85. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा नऽआयुः प्रमोषीः।।
यजु. 18/49

उपदेशः ''ज्ञान, कर्म व उपासना'' - तीनों का समन्वय ही जीवन को सुन्दर बनाता है। जो अपने में ज्ञान, कर्म व उपासना का सुन्दर सामंजस्य स्थापित नहीं करता, वह अपने जीवन को व्यर्थ में ही नष्ट करता है।

86. दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे।। यजु. 18/54

उपदेशः प्रभु की ओर चलने वाला व्यक्ति- (1) ज्ञान के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। (2) शरीर, मन व बुद्धि-तीनों का प्रकाश करके पूर्ण जीवन वाला होता है। (3) शाकाहारी भोजन करता है। (4) दुःखियों की सहायता करता है और (5) समाज के लिए मार्गदर्शक बनता है।

87. इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः।
तस्य नऽइष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः।। यजु. 18/56

उपदेशः इस मानव जीवन को उत्तम बनाने और प्रभु को प्राप्त करने का सर्वप्रमुख साधन ''यज्ञ'' है। यही इस लोक व परलोक में कल्याण करने वाला है। वास्तव में यज्ञ सब इष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

आइये ! हम अपने धन का विनियोग उत्तम यज्ञात्मक कर्मों में करें।

88. एतꣳसधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वोऽअत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन्।।

यजु. 18/59

उपदेशः प्रभु ने जीव को सृष्टि के प्रारम्भ में ही यज्ञ को प्राप्त कराया है। यज्ञ के द्वारा जहाँ वायु-शुद्धि, नीरोगता व उत्तम अन्न की प्राप्ति होती है, वहाँ सौमनस्य का भी लाभ होता है और इस उत्तम निर्मल मन में ही प्रभु का दर्शन होता है।

89. एतं जानाथ परमे व्योमन्देवाः सधस्था विद रूपमस्य।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै।।

यजु. 18/60

उपदेशः प्रभु प्राप्ति के चार उपाय हैं -(1) हृदय को पवित्र बनाना, (2) यज्ञादि पवित्र कर्मों में लगे रहना, (3) देवताओं के योग्य कर्म ही करना और (4) सन्तोषमय जीवन जीते हुए प्रतिदिन प्रभु की स्तुति प्रार्थना-उपासना करना।

90. येन वहसि सहस्त्रं येनाग्ने सर्ववेदसम।
तेनेम यज्ञं नो नये स्वर्देवेषु गन्तवे।। यजु. 18/62

उपदेशः अग्निहोत्र द्वारा हम अकेले न खाकर सहस्त्रों का भरण करते हैं। यह यज्ञ उत्तम अन्नादि की उत्पत्ति से हमारी सम्पत्ति का संवर्धन करता है। इसके अतिरिक्त यज्ञ वायुशुद्धि व रोगकृमि संहार से नीरोगता लाकर हमारा जीवन सुखद बनाता है। यज्ञ से हमारी स्वार्थ की वृत्ति भी समाप्त होती है और हम आसुरी वृत्तियों से ऊपर उठकर दैवी वृत्तियों में विचरण करने वाले होते हैं।

91. यत्र धाराऽअनपेता मधोर्घृतस्य च याः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्।। यजु. 18/65

उपदेशः जिस घर में निरन्तर मधुर हवि द्र्व्यों तथा घृत से यज्ञ चलते हैं, वहाँ स्वर्ग होता है, दिव्य गुणों की स्थापना होती है। घर में अग्निहोत्र (यज्ञ) को एक सामूहिक कार्य का रूप दिया जाय जिसमें घर के सभी सदस्य उपस्थित हों।

92. **अश्याम तं काममग्ने तवोतीऽअश्याम रयिꣳरयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तो ऽश्याम द्युम्नमजराजर ते।।**

यजु. 18/74

उपदेशः जो मनुष्य प्रभु की भांति सभी का हित करते हैं; प्रभु उनकी दिन-रात रक्षा करते हैं। प्रभु रक्षण से सब इच्छाओं की पूर्ति तथा धन प्राप्ति के साथ मनुष्य वीर बनता है। वासनाओं को जीतकर वह शरीर को ही सबल नहीं बनाता, अपितु मस्तिष्क को भी सशक्त करके प्रभु की अजर ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करता है।

93. **वयं तेऽअद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधता मन्मना विप्रोऽअग्ने।।**

यजु. 18/75

उपदेशः प्रभु भक्त अपनी कामना को प्रभु की कामना में मग्न (Merge) कर देता है। उसकी वही इच्छा होती है जो प्रभु की इच्छा हो। वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा को समाप्त कर देता है। वह कर्म करता है, परन्तु इस बात को भूलता नहीं कि यह सब ईश्वर की ही शक्ति है और वह इस शक्ति से होने वाले कार्यों का माध्यम मात्र है।

प्रभु के अनन्य (एकमात्र) चिंतन और यम-नियम के पालन से मनुष्य का जीवन शुद्ध व शक्तिशाली बनता है और उसकी सब कमियां दूर हो जाती हैं।

94. **स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन।
मधुमतीं मधुमता सृजामि सꣳसोमेन।
सोमो ऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय
सुत्राम्णे पच्यस्व।। यजु. 19/1**

उपदेशः उत्तम सन्तान के निर्माण में मधुर वाणी, समर्थ, निरोगता और मधुर व्यवहार अत्यन्त महत्व रखता है। यह पति-पत्नी में सामञ्जस्य और सौमनस्य पैदा करके सर्वांग सुन्दर सन्तान को जन्म देती है।

95. परीतो षिञ्चता सुतꣳसोमो यऽउत्तमꣳहविः।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः।।

यजु. 19/2

उपदेशः सोम (वीर्य रक्षण) हमारे जीवन को निरोग, सशक्त व दीर्घ बनाता है, बुद्धि को सूक्ष्म करता है, हमें परमात्मा-दर्शन के योग्य बनाता है और हमें सभी आधि-व्याधियों से सुरक्षित करता है।

सोम का शरीर में उत्पादन व रक्षण वही व्यक्ति कर पाता है, जो प्रभु-उपासन करता है, यम-नियम का पालन करता है और अपने को कर्मों में व्यापृत रखता है। प्रभु-उपासन से दूर होने पर और अकर्मण्य हो जाने पर हम वासनाओं के शिकार होने लगते हैं, तब सोम के रक्षण का प्रश्न ही नहीं उठता।

96. पुनाते ते परिस्रुतꣳसोमꣳसू्र्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना।। यजु. 19/4

उपदेशः श्रद्धावान पुरुष प्रभु में विश्वास करके सदा उत्तम क्रिया में लगा रहता है। यही उत्तम क्रिया सोम रक्षण का साधन बनती है और वासनाओं का निवारण करती है।

97. उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा।।

यजु. 19/8

उपदेशः ईश्वर को वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो उपासना के साथ-साथ यम-नियम का पालन करता है। उपासक को ज्ञान की

वह शक्ति प्राप्त होती है जो उसके सब कर्मों को पवित्र करने वाली होती है। उपासक शरीर से स्वस्थ, मस्तिष्क में ज्ञानदीप्त तथा हृदय में आत्मिक शक्ति सम्पन्न व पवित्र बनता है। वास्तव में, प्रभु उपासन हमारे जीवन में ''आनन्द'' भर देता है।

98 (क) यदापिपेष मातर पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
एतत्तदग्नेऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया।
सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त। यजु. 19/11

(ख) प्रैषभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजेभिरनुयजान्वषट्कारेभिराहुतीः।। यजु. 19/19

उपदेशः केवल सन्तान का उत्पादन ही हमें पितृऋण से मुक्त नहीं कर देता, सन्तान का उत्तम बनाना भी आवश्यक है। निःसन्देह, माता-पिता का उत्तम आचरण भी सन्तान को सच्चरित्र बनाता है।

99. सुरावन्तं बर्हिषदꣳसुवीर यज्ञꣳहिन्वन्ति महिषा नमोभिः।
दधानाः सोम दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः।।
यजु. 19/32

उपदेशः प्रभु के सम्पर्क के लिए उत्तम सात्त्विक अन्न सहायक होते हैं। इनसे अन्तःकरण की शुद्धि होकर स्मृति ठीक बनी रहती है और वासना-ग्रन्थियों का विनाश होकर हम प्रभु-दर्शन के योग्य हो जाते हैं।

100. यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रयाय।
इमं तꣳशुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳसोमꣳ राजानमिह भक्षयामि।।
यजु. 19/34

उपदेशः प्राणायाम की साधना वीर्य की केवल रक्षा ही नहीं करती, अपितु उस वीर पुरुष के अभिमान को शिकार भी नहीं होने देती।

प्राणायाम के अभ्यास के अभाव में यह वीर्य राजस रूप धारण करके मनुष्य को अहंकारी बना देता है।

अहंकार से ऊपर उठे हुए पुरुष का वीर्य उसकी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और उसकी शक्ति का वर्धन करने वाला होता है। वस्तुतः ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहना वीर्य रक्षा का सुन्दर साधन है। वीर्य का ज्ञानाग्नि-दीपन में विनियोग होकर उसका सुन्दर सद्व्यय हो जाता है, उससे आत्मा की शक्ति का वर्धन होता है।

101. यदत्र रिप्तꣳरसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳराजानमिह भक्षयामि।।

यजु. 19/35

उपदेशः सोम जीवन को मधुर बनाने वाला है। इसके अभाव में शरीर में रोग आ जाते हैं और मन में ईर्ष्या-द्वेष आदि पनपने लगते हैं। इस प्रकार मनुष्य का जीवन कड़वा हो जाता है। इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखने का साधन यह है कि मनुष्य यज्ञ-यागादि (परोपकार, निष्काम कर्म) में लगा रहे और अपने अतिरिक्त समय को ज्ञान-प्राप्ति में लगाये। इसके साथ-साथ अपनी वाणी से प्रभु का नाम-ओ३म्-अर्थ सहित जपने में प्रवृत्त रहे।

102. ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु।।

यजु. 19/51

उपदेशः हम भोजन वह करें जिसकी शरीर को आवश्यकता हो। उसे सदा प्रसन्नतापूर्वक ही खायें। हमारा भोजन यज्ञशेष हो। उत्तेजक भोजनों से हम बचने का प्रयत्न करें। सदा सोम का पान करने वाले, शक्ति की रक्षा करने वाले बनें।

103. ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२।।ऽउ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳसुकृतं जुषस्व।।

यजु. 19/67

उपदेशः हमें विद्वानों का आदर करना चाहिए, चाहे वे स्वदेश के हों, चाहे विदेश के। चाहे वे हमारे परिचित हों, चाहे अपरिचित। इतना जानना पर्याप्त है कि उनका जीवन पवित्र है या नहीं। यदि वे संयत जीवन जीने वाले हैं तो वे हमारे लिए आदरणीय ही हैं।

104. सोमो राजामृतꣳसुतऽऋजीषेणाजहान्मृत्युम। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धसऽइन्द्र स्येन्द्रियमिदं पयो ऽमृतं मधु।। यजु. 19/72

उपदेशः सोम की रक्षा करने वाला व्यक्ति सरल वृत्ति व स्वभाव का बनता है। उसके जीवन में सत्य तथा माधुर्य होता है। उसका जीवन सौम्य व शान्त होता है। उसके जीवन में व्यर्थ की चिन्ताएँ उत्पन्न नहीं होतीं। इसीलिए वह दीर्घजीवी बनता है और कभी भी अकाल मृत्यु का ग्रास नहीं होता।

105. सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रस परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम।।

यजु. 19/83

उपदेशः जीवन को उज्जवल व क्रियाशील बनाने के लिए (1) हमें ज्ञानपूर्वक आहार-विहार करना चाहिए, (2) विचारशील-उत्तम संकल्प वाला होना चाहिए (3) प्राणापान की शक्ति का वर्धन करना चाहिए, (4) शरीर की उन्नति के लिए पकवान्नों के रस का ग्रहण करना चाहिए और (5) त्याग वृत्ति वाला व धैर्यशील बनकर नीरोग व विकसित शरीर वाला बनना चाहिए।

106. सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रसं परिस्त्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम।। यजु.19/83

उपदेशः स्वस्थ व सुखी जीवन के लिए (1) हमें ज्ञानपूर्वक आहार-विहार करना चाहिए, (2) विचारशील उत्तम संकल्प

वाला होना चाहिए, (3) प्राणापान की शक्ति का वर्धन करना चाएि, (4) शरीर की उन्नति के लिए पक्वान्नों के रस का ग्रहण करना चाहिए और (5) त्याग वृत्ति वाला व धैर्यशील बनकर नीरोग व विकसित शरीर वाला बनना चाहिए।

107. आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि।।

यजु. 19/92

उपदेशः प्रभु का उपासक कभी भी स्तेय की ओर नहीं झुकता, यह 'अस्तेय' धर्म का पूर्ण पालन करने का प्रयत्न करता है। यह विषयासक्त होकर विषयों के परिग्रह में ही नहीं लगा रहता, अपितु इसके विपरीत वह 'अपरिग्रह' करने वाला होता है। ज्ञानाग्नि की दीप्ति के कारण यह अधिक से अधिक अहिंसक होता है।

108. यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः।।

यजु. 20/15

उपदेशः दिन के एक-एक क्षण को मूल्यवान समझना और उसे नष्ट न होने देना-यही दिन का सदुपयोग है। निरन्तर उत्तम कार्यों में लगे रहना, मनुष्य को दिन के विषय में सम्भव अपराधों से बचाता है और रात्रि में गाढ़ी निद्रा में जाकर मनुष्य रात्रि-सम्बन्धी पापों से भी बच जाता है।

109. यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि।। यजु. 20/17

उपदेशः प्रत्येक मनुष्य को निम्न सात प्रकार के पाप/अपराधों से बचना चाहिए -

(1) **ग्राम-विषयक अपराध :** नागरिक नियमों का न पालना, सड़क पर कूड़ा फेंक देना, मार्ग पर ठीक स्थान पर न चलना, यातायात के नियमों का पालन न करना, जलती तीली आदि को इधर-उधर डाल देना, बड़ी ऊंची तान पर रेडियो व टेलीविजन बजाना आदि। ये सब नागरिक अपराध है।

(2) **वन विषयक अपराध :** लकड़ी को काटना, परन्तु नये वृक्ष व वनस्पतियों को न लगाना।

(3) **सभा विषयक अपराध :** 'सभा' में शान्त भाव से न बैठना, बातें करते रहना, ध्यान भंग करने वाली या अप्रासंगिक बात करना। ये सब सभा-विषयक पाप हैं।

(4) **इन्द्रिय-विषयक पाप :** इन्द्रियों का दुरुपयोग करना या उनका उपयोग ही न करना। अत: हमें ज्ञानेन्द्रियों को सदा ज्ञान प्राप्ति में लगाये रखना चाहिये और कर्मेन्द्रियों को उत्तम कर्मों में।

(5) समाज में श्रम के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले शूद्रों के लिए अपशब्द आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वे वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों के सहायक हैं। उन्हें मनुष्य न समझना एक अपराध है।

(6) जो मनुष्य वैश्यों से उधार वस्तु लेकर या खरीदकर समय पर रुपया नहीं देते अथवा देने से ही बचने का प्रयत्न करते हैं, वे पाप कर्म करते हैं। इससे बचना चाहिए।

(7) पति-पत्नी दोनों मिलकर घर को बनाते हैं। पत्नी घर का काम संभालती है और पति बाहर का। इस प्रकार सम्मिलित उत्तरदायित्व होने पर भी दोनों के अलग-अलग विशिष्ट कर्तव्य हैं। ये ही उनके अधिधर्म हैं। एक दूसरे के अधिधर्मों के विषय में आलोचना करते रहना -यह अधिधर्म विषयक अपराध है। इससे

बचना चाहिए।

**110. यदापेऽअघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।
अव देवैर्देवकृतमेनो ऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो
देव रिषस्पाहि।। यजु. 20/18**

उपदेशः बड़ों के प्रति निरादर करना, बराबर वालों से कलह करना और छोटों के प्रति कठोरता अपनाना–ये भी मर्त्यकृत पाप का स्वरूप है। इनसे बचना चाहिए।

**111. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः।। यजु. 20/29**

उपदेशः प्रभु का प्रिय भक्त वह होता है जो (1) प्रतिदिन प्रातः सायं उसका ध्यान करता है, (2) नियम से दान देता है, (3) अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है, शुद्ध रखता है, (4) सदा प्रभु–नाम स्मरण करता है और (5) यम–नियम का पालन करता है।

**112. समिद्धऽइन्द्रऽउषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः।
त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार।।
यजु. 20/36**

उपदेशः प्रभु का उपासक स्वाध्याय द्वारा ज्ञान–समिद्ध बनता है। क्रियाशील जीवन के द्वारा वासना से ऊपर उठता है और मोक्ष के चारों द्वारों को अपने लिए खोलता हुआ शान्त, विचारशील, सन्तोषी व सत्संगी बनता है।

**113. त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि।
वृषा यजवृष्णं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान्।।
यजु. 20/44**

उपदेशः प्रभु के उपासन से बल प्राप्त होता है। हम यशस्वी कार्यों

को करने वाले बनते हैं और दिव्य गुणों से अपने जीवन को समलंकृत कर पाते हैं।

114. अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे।। यजु. 20/67

उपदेश: मानव जीवन की साधना में सबसे महत्त्व पूर्ण पग प्राण साधना (प्राणायाम) व स्वाध्याय हैं। इनसे मनुष्य में (1) त्यागपूर्वक अदन की भावना उत्पन्न होती है (2) इन्द्रियशक्ति का विकास होता है (3) वीर्य स्थिर होता है जो उसके जीवन को शुद्ध व क्रियाशील बनाता है और (4) उसे सुपथ-अर्जित ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

115. अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्।
हविषेन्द्रꣳसरस्वती यजमानमवर्द्धयन्।। यजु. 20/73

उपदेश: प्राणापान की साधना ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को निर्दोष बनाकर उनकी शक्ति को बढ़ाती है। प्राणापान के ठीक कार्य करने पर मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान-प्राप्ति में लगा रहता है और कर्मेन्द्रियों को उत्तम कर्मों में व्याप्त किये रहता है। इस प्रकार प्राण साधना से मनुष्य की सभी इन्द्रियों का बल बढ़ता है।

116. ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।। यजु. 20/75

उपदेश: जब मनुष्य ज्ञान के अनुसार कर्म करता है तब उसकी सब बुराइयाँ दूर होने लगती हैं, उसके अन्दर अच्छाइयाँ बढ़ने लगती है और वह वासना को नष्ट कर यज्ञशील बनता जाता है।

117. यस्मिन्नश्वासऽऋषभासऽउक्षणो वशा मेषाऽअव-सृष्टासऽआहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये।।
यजु. 20/78

उपदेश: अग्निहोत्र प्रतिदिन करने से मुख्यत: निम्न लाभ होते हैं:-

(1) वातावरण शुद्ध होता है। (2) रोग दूर होते हैं। (3) रुधिर शुद्ध होता है। (4) सोम की रक्षा होती है। (5) बुद्धि शुद्ध होती है। (6) ईश्वर-भक्ति में मन लगता है।

118. अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।। यजु. 20/80

उपदेशः स्वाध्याय मनुष्य के जीवन को उत्कृष्ट तो बनाता ही है, उसे वीर्य संयम के योग्य भी बनाता है, चूंकि उसका वीर्य उसकी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर शरीर में उत्तमता से उपयुक्त हो जाता है।

119. महोऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति।। यजु. 20/86

उपदेशः वेद ज्ञान का महान समुद्र है। यह प्रकाश से हमें प्रकृष्ट चेतना वाला बना देता है। इसमें सब सत्य विद्याओं का प्रकाश हुआ है। अतः इसको प्राप्त करने की प्रबल इच्छा व कामना प्रत्येक मनुष्य में होनी चाहिये।

120. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः।। यजु. 20/88

उपदेशः प्रभु-साक्षात्कार करने के लिए आवश्यक है-

(1) हम बुद्धिपूर्वक कर्म करें।
(2) सदा मेधावियों व ज्ञानियों का संग करें।
(3) वैदिक विद्वानों से कर्मों के लिए प्रेरणा प्राप्त करें।
(4) यज्ञों के करने वाले बनें।
(5) मेधावी हों।
(6) प्रभु-स्तवन की वृत्ति वाले बनें।

121. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा नऽआयुः प्र मोषीः।।
यजु. 21/2

उपदेशः ज्ञान-प्राप्ति व जीवन को सार्थक करने के दो ही उपाय हैं-

(1) हम वेद ज्ञान से प्रभु का स्तवन करें।

(2) यज्ञशील बनकर हविर्भुक बने, दान देकर बचे हुये को खाने वाले हों, केवलादी (अकेला खाने वाला) न बन जायें।

122. महीमू षु मातरꣳसुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम्।।

यजु. 21/5

उपदेशः वेद वाणी अपने अध्ययन करने वाले को जीर्णता से बचाने वाली है। इसका स्वाध्याय करने वाला क्रियाशील होता है। वेद ज्ञान की वाणी के अध्ययन के परिणामस्वरूप हम सब कार्यों में बड़े नियमित व मर्यादित हो जाते हैं और हमारा जीवन यज्ञशील होता है।

123. सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः।
बृहती छन्दऽ इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः।।

यजु. 21/15

उपदेशः जीवन को सशक्त, सफल व उत्कृष्ट बनाने के लिए -

(1) सदैव वानस्पतिक पौष्टिक भोजन करें।

(2) वासना-विनाश व यज्ञशील जीवन जियें।

(3) निरन्तर आगे बढ़ने की इच्छा व प्रयास करें।

(4) प्रकृति, जीव व परमात्मा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करके प्रतिदिन ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना व ध्यान करें।

124. तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे।।

यजु. 22/1

उपदेशः प्रभु जीव से कहते हैं - तुझे 'तेजस्वी, वीर्यवान व दीर्घ

जीवी बनना है। आयु को प्रभु की धरोहर समझना है। आयु के रक्षण के लिए :

(क) प्रभु के आदेश के अनुसार प्रत्येक वस्तु का माप-तोलकर प्रयोग करना है। (ख) प्रयत्न से अर्थों का उपार्जन करना है और (ग) प्रयोग में मापक-''पोषण'' को रखना है न कि ''स्वाद'' व ''सौन्दर्य'' को।

125. प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघाꣳसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा।।

यजु. 22/5

उपदेशः हृदयदेश में प्रभु के स्मरण से मनुष्य प्रजापति बनता है, बल व प्रकाश को प्राप्त करता है, गतिशीलता से बुराइयों को दूर करता है, चक्षु आदि इन्द्रियों को स्वस्थ रख पाता है, सूर्यादि देव व विद्वान इसके अनुकूल होते हैं।

प्रभु को भूलने वाला पीड़ित होता है, अन्ततः निरादृत होता है और अधोगति को प्राप्त करता है।

126. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा।। यजु. 22/6

उपदेशः जब मनुष्य स्वार्थ से ऊपर उठता है और प्रभु के प्रति अर्पण की वृत्ति वाला बनता है तब वह अपने अन्दर अग्नि, सोम, अपां, मोद, सविता, वायु, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, मित्र और वरुण-इन दस तत्त्वों को धारण करने वाला बनता है। यही दशक उसका धर्म हो जाता है। वह इस दशलक्षण धर्म को धारण करता है।

127. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या।। यजु. 22/18

उपदेशः पवित्रता से ज्ञान दीप्त होता है। शक्ति के लिए हमें सात्विक दुग्ध, भोजन आदि पदार्थों का प्रयोग करना है। हम सदा पृथिवी आदि लोकों के प्राणियों के जीवन के उद्देश्य से तथा बहुत के धारण के उद्देश्य से क्रियाओं को करने वाले बनें।

128. विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्यो ऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि। ययुर्नामा ऽसि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवाऽआशापालाऽ एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳरक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा।। यजु. 22/19

उपदेशः हम उदार हृदय व शक्तिशाली बनकर सदा क्रियाशील बनें। अपने को पवित्र कर प्रभु से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। इस सम्बन्ध में शक्तिशाली बनकर लोकसेवा के कार्यों में लग जायें। सर्वत्र अच्छाई को ग्रहण करके आगे बढ़ते चलें। इसी जीवन में आनन्द-प्राप्ति, कष्ट-सहनशक्ति व आत्मधारण है।

129. काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै समृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा।। यजु. 22/20

उपदेशः यदि राष्ट्र में सब व्यक्ति निर्माण के कार्यों में लग जायें तो

जहाँ राष्ट्र का शीघ्र ही कल्याण हो जाएगा, वहाँ राष्ट्र को बड़ा सुन्दर रूप प्राप्त होगा। देश की आकृति ही बदल जाएगी। सब जगह 'सुख, सौन्दर्य व शान्ति' का राज्य हो सकेगा। इसके लिए वेद में प्रभु जीव को आदेश देते हैं कि हे जीव! तू इस व्यापक मनोवृत्ति के लिए स्वार्थ त्याग कर।

130. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो रायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।।

यजु. 22/21

उपदेशः यह भी ठीक है कि इस संसार में धन के बिना कोई कार्य नहीं चलता, अतः वेद कहता है कि इस यज्ञ के कारणभूत धन का भी वरण करो परन्तु उतना ही जितना की पोषण के लिए पर्याप्त हो। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वरण किया गया धन हमारे पतन का कारण नहीं बनता, उसी प्रकार जैसे भोजन शरीर का रक्षण ही करता है। यह अतिभोजन ही है जो शरीर को हानि पहुँचाता है। इसलिए हमें धन का दास नहीं बनना चाहिए-स्वार्थ त्याग की वृत्ति वाला बनना चाहिये।

131. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि।। यजु. 23/5

उपदेशः उपासना द्वारा प्रभु को अपने साथ जोड़ना ही योग है। वे प्रभु महान हैं, आरोचमान हैं, चारों ओर स्थित पदार्थों में विद्यमान हैं, उसी प्रभु की शक्ति से द्युलोक में सूर्यादि पदार्थ देदीप्यमान हैं।

132. सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः।।

यजु. 23/14

उपदेशः शरीर व इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य क्रियाशीलता से अपनी शोभा को बढ़ाकर ब्रह्म बनता है और सोम की रक्षा से आगे

और आगे चलने वाला बनता है।

**133. स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते ऽन्येन न सन्नशे।। यजु. 23/15**

उपदेशः मनुष्य को ओरों की ओर न देखते हुए तथा औरों पर आश्रित न होते हुए अपने शरीर को शक्तिशाली बनाीना चाहिए, यज्ञशील बनाना चाहिए, प्रभु का उपासक बनना चाहिए। उसे यह विश्वास रखना चाहिए कि उसके महत्त्व को कोई दूसरा नष्ट नहीं कर सकता। वह स्वयं अपनी ही गलती से नष्ट कर ले तो और बात है।

**134. महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा।।**

यजु. 23/35

उपदेशः वेद की विविध वाणियाँ यह उपदेश दे रही हैं कि –

(1) तुम उस महान प्रभु का स्मरण करो।
(2) वास्तविक ऐश्वर्य का अर्जन करो।
(3) सब दिशाओं में उन्नति करो।
(4) मेघों की भांति सन्ताप हरने वाले बनो और
(5) बिजली की भांति चमकते हुए अन्धेर में औरों को रास्ता दिखाने वाले बनो।

**135. का॑ऽईमरे पिशङ्गिला का॑ऽईं कुरुपिशङ्गिला।
क॑ऽईमास्कन्दमर्षति क॑ऽईं पन्थां वि सर्पति।।**

यजु. 23/56

उपदेशः अहिंसक व्यक्ति तथा सदा लोकहित के व्यापक कर्मों में लगे रहने वाला व्यक्ति ही उत्कृष्ट मार्ग पर चलता है, अर्थात् संसार में मार्गभ्रष्ट वही व्यक्ति है जो (क) हिंसारत है, (ख) व्यापक मनोवृत्ति बनाकर कर्मों में नहीं लगा हुआ, (ग) स्वार्थी है।

136. स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

यजु. 25/19

उपदेशः हम प्रभु की उपासना करते हुये-(1) वृद्ध ज्ञान वाले व काम-क्रोधादि शत्रुओं का संहार करने वाले बनें, (2) पोषण के लिए आवश्यक धन प्राप्त करें, (3) निरन्तर क्रियाशील जीवन बिताते हुए कभी मर्यादा का उल्लंघन न करें और (4)उदारहृदय बनकर कल्याण को सिद्ध करें।

137. शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरस तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।

यजु. 25/22

उपदेशः जैसे वृद्धावस्था में भी शरीर के लिए भोजन आवश्यक होता है, उसी प्रकार मानस पोषण के लिए देवों की प्रेरणायें भी आवश्यक होती हैं। इन प्रेरणाओं से हम मार्ग में नहीं रूक जाते अपितु पूर्ण जीवन को प्राप्त करने वाले होते हैं।

138. यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङ्जो मेम्यद्विश्वरूपऽ इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः।।

यजु. 25/25

उपदेशः (क) हम धन से अपने को आच्छादित करें अर्थात् खूब कमाएँ परन्तु शुद्ध साधनों से, (ख) इस धन का मुख्य उपयोग दान हो - दान देकर बचे हुए धन को ही खाने का विचार करें, (ग) प्रभु को हृदयस्थ कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करें और (घ) उसी अन्न का सेवन करें जो संयम व पोषण की दृष्टि से ठीक हो।

139. यदूवध्यमुदरस्यापवाति यऽआमस्य क्रविषो गन्धोऽअस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳशृतपाक पचन्तु।।

यजु. 25/33

उपदेशः हम सात्विक पदार्थों का ही सेवन करें और उन सात्विक पदार्थों का सदा उचित परिपाक करके ही सेवन करें। फलों को भी कच्चे व गले रूप में कभी सेवन न करें।

140. इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳशतक्रतो गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतो ऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽ एष योनिरिन्द्राय त्वा गोमते।।

यजु. 26/5

उपदेशः प्रभु की प्राप्ति के लिए सोम (वीर्य) की रक्षा आवश्यक है, उस सोमरक्षा के लिए हम वेदज्ञान को प्राप्त करने वाले बनें और प्रभ का स्तवन करने वाले हों। वेद ज्ञान भी प्रभु की प्राप्ति के लिए साधन होता है।

141. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतो ऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा।।

यजु0 26/7

उपदेशः प्रभु का दर्शन करने वाला इस संसार में भोगों में नहीं उलझता, सब मनुष्यों का हित करने वाला होता है और उन्नति-पथ पर सदा आगे बढ़ता है। प्रभु भी उसकी सहायता करते हैं। यह वेदज्ञान उसे प्रभु-प्राप्ति के योग्य बनता है।

142. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रꣳशर्म महि श्रवः।। यजु. 26/16

उपदेशः हम जितना सोम का रक्षण करेंगे उतना ही उत्कृष्ट हमारा विकास होगा, प्रकाशमय-जीवन बिताते हुए हम उत्तम सात्विक पार्थिव पदार्थों को ग्रहण करेंगे, परिणामतः हमें उदात्त सुख व महनीय कीर्ति व धन प्राप्त होगा।

143. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुपं। त्वष्टारꣳसोमपीतये।। यजु. 26/20

उपदेश: आगे बढ़ने का अभिप्राय है जीवन में दिव्य गुणों को आमन्त्रित करना। दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए सोम रक्षा आवश्यक है। सोम को शरीर में ही व्याप्त करने के लिए हम त्वष्टा बनें, सदा ज्ञान की प्राप्ति करने वाले तथा क्रियाशील जीवन वाले हों।

144. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते।
द्रोणे सधस्थमासदत्।। यजु. 26/26

उपदेश: सोम रोगकृमियों का नाशक है, राक्षसीवृत्तियों को दूर करता है, सम्पूर्ण विज्ञान का साधन बनता है। शरीर में व्याप्त होकर यह शरीर को लोहे का बना हुआ अत्यन्त दृढ़ बना देता है और उस वज्रतुल्य दृढ़ शरीर में प्रभु के साथ सहस्थिति को प्राप्त कराता है।

145. अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा।
अग्निꣳस्रुचोऽअध्वरेषु प्रयत्सु।। यजु. 27/14

उपदेश: प्रभु की ओर जाने के लिए आवश्यक है कि (क) हम बलवान बनें (ख) नैर्मल्य व दीप्ति वाले हों (ग) कार्यभार को उठाने वाले हों, (घ) नम्र हों।

146. होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्याऽअधि।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यतऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज।। यजु. 28/1

उपदेश: होता बनकर, ज्ञान की वाणियों की चर्चा करते हुए हम हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करने का प्रयत्न करें। इससे हमें शक्ति प्राप्त होगी, हम श्रमशील व शत्रु-विजेताओं के अग्रणी बनेंगे।

147. होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वनममर्त्यम्।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज।।
यजु. 28/3

उपदेश: प्रभु वेदवाणियों से स्तुत होते हैं। उन प्रभु से मेल बनाकर जीव भी देव बनता है। जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठता है।

अतः जीव को चाहिए कि शक्ति की रक्षा करे और दानशील बनकर प्रभु को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो।

148. होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्र भिषज्यतः।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्तऽइन्द्रियं वीतामज्यस्य होतर्यज।।

यजु. 28/7

उपदेशः प्राणापान साधक को निरोग करते हैं। ये उसे क्रान्तदर्शी, दिव्य गुणों वाला और ज्ञानी बनाते हैं। प्राणापान हमारे रेतस् (वीर्य) की ऊर्ध्वगति का साधन बन जाता है।

149. होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासान दर्शते विश्वमिन्द्र वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज।। यजु. 28/29

उपदेशः होता पुरुष (दानपूर्वक अदन करने वाला व्यक्ति) के लिए दिन-रात बड़े सुन्दर होते हैं, ये उसे सौन्दर्य प्रदान करते हैं। यह इनके चक्र में प्रभु की रचना-सौन्दर्य को देखता हुआ प्रभु को पूजता है, उसके साथ अपना सम्पर्क बनाता है और उसके प्रति अपना अर्पण कर देता है।

150. समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः।
वाजी वहन्वाजिन जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम्।।

यजु. 29/1

उपदेशः प्रभु भक्त के जीवन में ज्ञान का सर्वोपरि स्थान होता है। उसे यह पता है कि ज्ञानी भक्त ही प्रभु को आत्मतुल्य प्रिय है। इसके व्यवहार में सदा विचारशीलता का आभास मिलता है। यह कोई भी काम नासमझी से नहीं करता है। उस सर्वशक्तिमान प्रभु को अपने हृदय में धारण करता है। प्रभु को हृदय में धारण करने से आविर्भूत ज्योति वाला होता है।